रेणु की रचनाओं में राजनीतिक चेतना की अभिव्यक्ति का अध्ययन

विनय पासवान
शोध छात्र
हिन्दी विभाग,
जगदम कॉलेज, छपरा

स्वातंत्र्यपूर्ण समय में देश के प्रायः साहित्यकार राजनीति से जुड़े रहे। इन साहित्यकारों ने अपनी–अपनी। रचनाओं के माध्यम से देशवासियों के हृदय में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने का काम किया। यदा–कदा अपने भाषणों द्वारा भी वे लोगों में देश–प्रेम की भावना भरते रहे। लेकिन स्वतंर्त्योत्तरकालीन भारतीय राजनीति से बहुत कम साहित्यकार जुड़े रहे।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' भी एक सजग साहित्यकार थे जो स्वतंत्रतापूर्व राजनीति से तो जुड़े थे ही, स्वातंत्र्योत्तर राजनीति से भी जुड़े रहे। एक ओर तो वे राजनीति के धरातल पर विरोध का स्वर मुखर करते रहे तो दूसरा ओर लोक–जीवन से भी उन्होंने अपना सम्बन्ध बनाये रखा। उनके राजनीतिक जीवन का आरंभ सन् 1942 ई० से बनारस में हुआ था, जब वे अपने छात्र–जीवन में ही थे। इसके बाद से सतत उनकी राजनीतिक सक्रियता बनी रही।

जब सन् 1942 ई० में महात्मा गाँधी ने 'व्यक्तिगत सत्याग्रह किया। तो इसमें रेणु ने भी भाग लिया था। इसी प्रकार मुजफ्फरपुर के किसान आन्दोलन' में भी उन्होंने किसानों का साथ दिया। सन् 1942 ई० के 'अगस्त आन्दोलन' में भी वे किसी से पीछे न रहे। अंग्रेजी द्वारा आयोजित क्रिकेट मैच' को भी असफल बनाने में वे बड़े ही सक्रिय रहे और पिकेटिंग आदि में भी वे भाग लेते रहे। उनकी राजनीतिक गतिविधियों को देखते हुए अंग्रेजी सरकार ने सन् 1942 ई० में उन्हें सश्रम कारावास की सजा दी, मगर इसकी रेणु ने तनिक भी परवाह नहीं की। ढाई वर्षों तक वे कारागार में रहे और वहीं कुछ नेताओं के सम्पर्क में आने पर उनमें समाजवादी विचारधारा का उद्रेकीकरण हुआ और उन्हें कतिपय प्रेरणाएँ मिलीं। यहाँ उन्हें शिक्षा ग्रहण करने का अवसर तो मिला। ही, साहित्य,–सर्जना की प्रेरणा भी मिली। कारागार से मुक्त होने पर जयप्रकाश स- नारायण से उनकी घनिष्टता हो गयी और उन्होंने सोसलिष्ट पार्टी का कार्य करना आरंभ कर दिया, मगर उन्हें ऐसा लगा कि लोगों का झुकाव सोसलिष्ट पार्टी की ओर उतना नहीं है जितना की काँग्रेस की ओर।

जब देश स्वतंत्र हा गया और पहला आम चुनाव हुआ तो समाजवादी पार्टी की पराजय को देखते हुए उन्होंने अपने को सक्रिय राजनीति से अलग कर लिया और साहित्य–साधना में अपना मन लगाया।

रेणु अपने छात्र–जीवन से ही एक क्रांतिकारी व्यक्ति थे। जिन दिनों वे चौथे वर्ग के छात्र थे, उन दिनों उन्हें हड़ताल में भाग लेने के कारण सभी विद्यार्थियों के सामने बेंत लगाने की सजा दी गयी थी। मगर रेणु इससे तनिक भी विचलित नहीं हुए और 'बन्दे मातरम्' का नारा लगाते हुए उन्होंने वह सजा स्वीकार कर ली। उनके मन की क्रांति–भावना यहीं शांत न हुई, बल्कि वह और अधिक बढ़ती ही गयी। तभी तो उन्होंने पड़ोसी देश नेपाल की राजनीति में भी भाग लेना शुरू कर दिया। सन् 1950 में जब वी० पी० कोइराला ने नेपाल की राजशाही के विरुद्ध आन्दोलन छेडा तो उस सशस्त्र संघर्ष में भी उन्होंने सक्रिय होकर भाग लिया था। उन दिनों फौजी वेष–भूषा में अपनी पीठ पर वायरलेस सेट लादकर वे नेपाल के कोने–कोने में क्रान्ति का सन्देश पहुँचाते रहे। रेणु ने अपने प्राण से भी अधिक स्वतंत्रता को मूल्यवान समझा, तभी तो वे कभी नगरों में, कभी गाँवों में और कभी जंगलों में भटकते रहे। अन्त में नेपाल में पंचायत प्रणाली (लोकतंत्र) की स्थापना हुई। इस सशस्त्र क्रांति के समय उन्हें जो अनुभूति हुई इसका उल्लेख उन्होंने 'नेपाली क्रांतिकथा' नामक रिर्पोताज में विस्तार के साथ किया है।

जब सन् 1964 ई० में देश में आपातकाल की घोषणा हुई तो तानाशाही सत्ता का विरोध करने के क्रम में उन्होंने स्थान–स्थान पर नुक्कड़ सभाओं, नुक्कड़ नाटकों और कवि–गोष्ठियों का आयोजन किया तथा पर्चे लिखे। अन्यायी सत्ता का विरोध करने के उद्देश्य से उन्होंने अपनी पद्म श्री की उपाधि
सरकार को लौटा दी और ३०० रुपये मासिक सरकारी सहायता लेने से भी न
इन्कार कर दिया। जब केन्द्रीय सरकार ने चुनाव की घोषणा की तब नवोदित
जनता पार्टी के पक्ष में इन्होंने घूम–घूमकर प्रचार किया और यही पार्टी विजयी
हुई। जिस दिन लोकसभा में पार्टी के नेता का चुनाव था, उसी दिन वे पेप्टिक
अल्सर से इस प्रकार बुरी तरह पीड़ित रहे कि उन्हें ऑपरेशन कराना पड़ा। वे उन्नीस दिनों तक बेहोशी की स्थिति में अस्पताल में पड़े रहे और 11 अप्रैल 1966 को सदा सदा के लिए इस संसार से विदा हो गये।

जहाँ तक रेणु के राजनीतिक जीवन की बात है, वे राजनीति में भाग लेकर किसी उच्च पद पर नहीं जाना चाहते थे। उनमें न तो यथार्थ–लिप्सा थी–और न उन्हें यश की ही चाह थी। सच तो यह है कि उनकी राजनीति में कहीं । से भी संकीर्णता का भाव न था, बल्कि उसमें उदारता की भावना थी और उनका। उद्देश्य मानवता का कल्याण था।

राजनीति में भाग लेकर भी रेणु अपनी साहित्य–सर्जना में लगे रहे। जिस प्रकार एक साहित्यकार के रूप में आदर्श बने रहे, उसी प्रकार एक।

सन् 1953 ई० से सन् 1973 ई० तक रेणु सक्रिय राजनीति से लगभग उदासीन ही रहे क्योंकि राजनीति का तरीका उन दिनों विशेष छल–छन्द से भरा हुआ था। इतना होने पर भी उनके मन में राजनीति की आग सुलगती ही रही। वे स्वस्थ राजनीतिक वातावरण का निर्माण और विकास चाहते थे। – इसीलिए उक्त अवधि में वे राजनीति के प्रति मौन रहे और लेखन कार्य में संलग्न रहे।

रेणु का मानना था कि जब तक देश की जनता शिक्षित न होगी, अपने अधिकारों और कर्तव्यों को नहीं जानेगी तबतक राजनीति में सुधार नहीं । हो सकता। वे राजनीतिक वातावरण में परिवर्तन लाना चाहते थे। इसीलिए सन् 1962 ई० में उन्होंने फिर सक्रिय होकर राजनीति में भाग लेना शुरू कर दिया। 'वे फारविसगंज विधान सभा चुनाव में स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में खड़े हुए, मगर : जातिगत, दलगत और सम्प्रदायगत राजनीति के चलते हार गये। उन्होंने यह बात , अच्छी तरह जान ली कि जबतक जाति–पाँति, सम्प्रदाय, दल, पैसे और लाठी की। राजनीति रहेगी तबतक उसमें सुधार नहीं हो सकता।

संदर्भ :–

1. डॉ0 त्रिभुवन सिंह आधुनिक साहित्यक निबंध रत्ना पब्लिकेशन, वाराणसी
2. श्री राकेश मैला आंचल एक प्रमाणिक अध्ययन
3. राजकुमारी खेरिया आंचलिक हिन्दी कथा साहित्य में रेणु की देन गुड–बुक्स बेगुसराय,
4. डॉ0 उमाशंकर राय फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास में ग्रामीण जीवन के विभिन्न परिवेश।